# कुशीनगर में अज्ञेय

० अरुणेश नीरन

अज्ञेय को कुशीनगर बहुत प्रिय था। लोग उस कुशीनगर को जानते हैं जहाँ बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था, जहाँ सुभद्द (सुभद्र) को अंतिम दीक्षा मिली थी, जहाँ उनके शव को पाने के लिए आठ राज्यों की सेनाएँ आपस में युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गयी थीं, जहाँ उनका चक्रवर्ती सम्राट की तरह ~~[illegible]~~ दाह-संस्कार हुआ था और आठ भागों में उनकी अस्थियों के फूल बाँटे गये थे। लेकिन वह मृण्मय कुशीनगर है जो इतिहास में है। एक चिन्मय कुशीनगर भी है जो इतिहास में नहीं है। मृण्मय में द्रष्टा होता है, दृष्टि होती है, दृश्य होते हैं। उसमें द्रष्टा के अनुभव को कहा जा सकता है। लेकिन चिन्मय को कैसे कहा जाय? कौन कहेगा? कैसे कहेगा? किससे कहेगा? वहाँ तो कुछ है ही नहीं। उसमें तो तन्मय ही हुआ जा सकता है। डूबा और विसर्जित हुआ जा सकता है। ~~[illegible]~~

मृण्मय कुशीनगर के पुरातत्त्व-शिविर में वे पैदा हुए लेकिन जीवन भर चिन्मय की खोज चलती रही। इसीलिए वे बार-बार यहाँ आते रहे मौन का रहस्य जानने, शून्य को धारण करने, आत्म की स्रोतस्विनी के उत्स को खोजने। नदी का द्वीप बन कर, नदी, जो उन्हें वृहद् भू-खण्ड से मिलाती थी, वृहद् भू-खण्ड जो उनका पितर था। आत्म की यह स्रोतस्विनी उनकी सत्ता के अगाध रस-भण्डार से निःसृत होकर, शून्य में सन्नाटे को बुनती हुई, उसी चिन्मय, अनुभूति निरंजित समाधिमय महासत्ता के समुद्र में विलीन हो जाती है। 'नदी' और 'सागर' अज्ञेय के प्रिय प्रतीक हैं। मूल स्रोत से सागर तक और सागर से मूल स्रोत तक— एक ही सत्ता है जो अनादि है, अनन्त है। मूल स्रोत भी वही सागर है जो नदियों के शून्य जल-भण्डार को भरने के लिए अपने
1 जल को वाष्प बना कर आकाश में पहुँचाता है और वे मेघ बन कर नदी को भर देते हैं। नदी के सृजन और विसर्जन का कारण सागर है। एकता, प्राणमय एकता ही सबका सार है। इसी एकता के वे अन्वेषी थे। नदी से सागर तक का प्रवाह, जीवन का प्रवाह था।

इसलिए वे किसी एक केन्द्र से बँधे नहीं थे। कुशीनगर से जो जीवन-यात्रा शुरू हुई थी वह दिल्ली के जन-समुद्र में विलीन हुई। कुशीनगर, मेरठ, आगरा, कलकत्ता, पूर्वोत्तर, इलाहाबाद फिर दिल्ली— बीच-बीच में लंबे लंबे विदेश प्रवास— लेकिन घर उनका होते हुए भी कहीं नहीं था। क्योंकि उनका घर रहने के लिए था ही नहीं, वह लौटने के लिए था। उनके भीतर भी घर की खोज चल रही थी। इसी खोज-यात्रा में वे बार-बार कुशीनगर आते रहे।

००

सन् १९८३ में मैंने उन्हें आमंत्रित किया बुद्ध महाविद्यालय में दीक्षांत-भाषण देने के लिए। एक वर्ष पूर्व महादेवी वर्मा दीक्षांत समारोह की मुख्य अतिथि थीं और उन्होंने अपने भाषण से श्रोता-समूह को सम्मोहित कर लिया था। इस वर्ष सब अज्ञेय को सुनना चाहते थे।

मैं वहाँ हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक था। मेरे प्राचार्य ने अज्ञेय को बुलाने और कुशीनगर में उनके स्वागत का दायित्व मुझे सौंप दिया। अज्ञेय को गोरखपुर एयर-पोर्ट पर रिसीव कर मैं कुशीनगर ला रहा था तो उन्होंने मुझसे पूछा कि दीक्षांत-समारोह में क्या गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति बालकृष्ण राव भी आयेंगे? मैंने जवाब दिया कि वे ही दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता करेंगे। दूसरे दिन राव साहब पथिक निवास आये जहाँ अज्ञेय ठहरे हुए थे। दोनों इलाहाबाद की चर्चा में डूब गये। राव साहब ही ज्यादा बोल रहे थे अज्ञेय कभी कभी कोई टीप लगा देते थे। इलाहाबादी संस्कृति पर चर्चा होते होते बात संस्कृति पर आयी। राव साहब ने कहा कि हिन्दुस्तान साक्षर हो रहा है, अपनी संस्कृति को समझने लगा है। अज्ञेय ने टोका और कहा कि हमारा देश सदियों से श्रुति-परंपरा में पला है, काला अक्षर भले ही उसके लिए भैंस बराबर हो, पर वाणी की जो उज्ज्वल

मूर्ति उसके स्मृति-पटल पर जगमगाती रही है वह उसी अंधकार भरे जीवन में भी राह दिखाती रही है, सार्थकता और अंतःसमृद्धि देती रही है। साक्षरता नये प्रकार के निरक्षर पैदा कर रही है। निरक्षर के लिए संस्कृति स्वभाव है, साक्षर के लिए अध्ययन का एक विषय।

अज्ञेय ने दीक्षांत समारोह में अद्भुत भाषण दिया। निस्तब्ध होकर लोग सुनते रहे। उन्होंने व्याख्यान का समापन करते हुए कहा, 'आप देश के लोकसमाज को साक्षर बनाने के काम में लगें या न लगें, लेकिन यह दायित्व तो आप पर आ ही गया है कि लोकसमाज की समृद्धि के ~~लिए~~ उस आधार को न विघटित होने दें, उस संस्कारिता की लौ को न बुझने दें। यह धारा है, स्रोत है — वह जीवनदायी अमृत का स्रोत ही नहीं, उस आलोक का भी स्रोत है जिसके बिना अमृत की भी पहचान नहीं होती।'

लोकसमाज के प्रति उनकी आस्था का प्रमाण दूसरे ही दिन मिल गया। कुलपति राव साहब अगले दिन पुनः अज्ञेय से मिलने आये। आते ही कहा, 'वात्स्यायन जी, मेरी इच्छा है कि कल विश्वविद्यालय में आप का काव्य-पाठ या व्याख्यान हो। कब समय दे रहे हैं?'

वात्स्यायन जी चुप। राव साहब ने प्रश्न दुहराया, 'मेरी इच्छा है....'। फिर चुप। तीसरी बार प्रश्न दुहराया गया, 'मेरी इच्छा है...'।

अज्ञेय की चुप्पी टूटी, 'आपकी इच्छा हो सकती है। मैं तीन दिन के बाद दिल्ली जा रहा हूँ। वहीं संपर्क करिये। देखेंगे। अच्छा नमस्कार।' बात समाप्त। अज्ञेय के हाथ जुड़ गये। अवाक् राव साहब चले गये।

उसी दिन शाम को हम शिक्षाशास्त्र के एक प्राध्यापक के घर भोजन करने गये। अज्ञेय ने मुझसे किसी के घर भोजन की व्यवस्था करने को कहा था क्योंकि तीन सितारा पथिक निवास का भोजन
२ उन्हें पसंद नहीं आया था।

उस प्राध्यापक के यहाँ पहले से ही दस-पन्द्रह ग्रामीण लोग इकट्ठे होकर बतरस का आनन्द ले रहे थे। अज्ञेय चौकी पर पालथी मार कर बैठ गये।

'अज्ञेय जी, कोई कविता सुनाइये।' एक ग्रामीण ने माँग की।

मैं तो स्तब्ध रह गया। कहीं अज्ञेय नाराज़ होकर उठ न जायँ। राव साहब को सवेरे दिया गया उत्तर मुझे बार बार याद आ रहा था।

'देखिये, मेरे पास अपना कोई कविता-संकलन नहीं है और कविताएँ याद नहीं हैं।' अज्ञेय ने मुसकराते हुए कहा।

इसी बीच एक सज्जन चुपके से निकले और अपने आवास से 'सुनहले शैवाल' की प्रति लाकर रख ~~दिया~~ दी।

अज्ञेय ने पुस्तक हाथ में ली और डेढ़ घंटे तक काव्यपाठ करते रहे। कुशीनगर की उस शांत संध्या में गूँजते हुए अज्ञेय के स्वर में जो आत्मीयता थी, जो रस था, जो पीड़ा थी, उसके जादू में हम न जाने किस लोक में पहुँच गये थे। संध्या के उस धुँधलके में जैसे प्रकाश का एक वलय स्वरों के पंखों पर उतर आया हो और हर श्रोता अब उसके वृत्त में चलने वाला राहगीर बन गया हो। हर श्रोता की आँख गीली हो गयी थी। कवि के स्वर, शाम का सन्नाटा और झरती ओस ने सबको जैसे सम्मोहित कर दिया ~~हो~~ था।

लौटते वक्त मैंने पूछा, 'अज्ञेय जी, वह आपका श्रोतावर्ग नहीं था। मैं माफ़ी माँगता हूँ।'

'इसकी आवश्यकता नहीं है। वही श्रोतावर्ग मेरी कविताओं का आधार है और उन्हीं की चेतना मेरी रचना-भूमि है। मैं तो कृतज्ञ हूँ आपका कि आप वहाँ ले गये।' अज्ञेय बोले।

००

मेरे गुरु पं० विद्यानिवास मिश्र का आदेश मिला कि अज्ञेय जी का पैंसठवाँ जन्म-दिन हम लोग

कुशीनगर में मनायेंगे, वहीं, जहाँ उनका जन्म हुआ था। तैयारी शुरू कर दो।'

इस बार कॉलेज का दीक्षांत समारोह तो था नहीं कि सारी व्यवस्था कॉलेज करता। सूचना मिली कि समारोह की अध्यक्षता पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी करेंगे और अज्ञेय की बड़ी बहन तो आ ही रही हैं; भवानीप्रसाद मिश्र, लोठार लुत्से, डॉ० रघुवंश, जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रामकमल राय, केदारनाथ सिंह आदि भी साथ रहेंगे।

हम लोग सहकारी व्यवस्था में जुट गये। कहीं से ईंट कहीं से रोड़ा लेकर कार्यक्रम का कुनबा तैयार किया गया। आकाशवाणी ने कार की व्यवस्था कर दी, मित्रों ने आवास की, कॉलेज ने निःशुल्क अपना हॉल दे दिया। कुछ लोगों ने भोजन का जिम्मा लिया। मार्गव्यय की व्यवस्था करनी नहीं थी क्योंकि सभी लोग अपने संसाधनों से आ रहे थे।

सहयोग माँगने हम लोग प्रदेश के एक वरिष्ठ नेता के घर गये और अनुरोध किया कि कार्यक्रम के बाद वे सबको जलपान कराने की व्यवस्था कर दें। वे सहर्ष तैयार हो गये लेकिन उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि यह आयोजन कुशीनगर के समारोह-स्थल पर नहीं, उनकी कोठी के लॉन पर होगा। उन्होंने यह भी कहा कि प्रस्तावित अज्ञेय-संस्थान के लिए वे दस हजार रु० की सहयोग राशि भी देंगे।

सात मार्च को सभी लोग जुटे। बड़ी बहन सत्यवती जी ने वह स्थान दिखवाया जहाँ वह शिविर लगा था और जिसमें सात मार्च सन् १९११ को अज्ञेय का जन्म हुआ था। सभी ने वहाँ शाल के एक-एक पौधे को रोपा फिर मुख्य कार्यक्रम के लिए हॉल में पहुँचे। अज्ञेय ने चतुर्वेदी जी और बड़ी बहन का चरण-स्पर्श किया और कार्यक्रम आरंभ हुआ। अज्ञेय के बगल में बैठे विद्यानिवास जी ने घोषणा की कि भाषण केवल उन्हीं का होगा जो कवि नहीं हैं, जो कवि हैं वे काव्य-पाठ के द्वारा आदरांजलि देंगे। केदार जी, परमानन्द श्रीवास्तव, भवानी भाई, विश्वनाथप्रसाद तिवारी,
3 राहगीर, अनन्त मिश्र ने अपनी कविताएं सुनायीं बाकी ने अज्ञेय के कविकर्म और व्यक्तित्व पर व्याख्यान दिये, चतुर्वेदी जी ने आशीर्वाद दिया और अज्ञेय के भावविभोर होकर दिये गये आभार के बाद कार्यक्रम समाप्त हो गया।

इसी के बाद उस नेता के घर जाना था, जलपान के लिए। हम लोग बाहर निकले तो आकाशवाणी की कार नहीं थी। उसी से दो कि०मी० दूर नेताजी की कोठी में पहुँचना था। विवश होकर मैंने सर मजीठिया से अनुरोध किया कि वे अपनी मर्सिडीज से तीन-चार खेप में सबको वहाँ पहुँचा दें। चौरासी वर्षीय मजीठिया साहब से यह अनुरोध करते हुए संकोच हो रहा था लेकिन कोई दूसरा विकल्प भी नहीं था।

मजीठिया साहब ने प्रसन्नता से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पहली खेप में अज्ञेय, भवानी भाई, विद्यानिवास मिश्र को स्वयं ~~पहुँचाने~~ लेकर कसया पहुँचे, नेता जी की कोठी पर। चार-पाँच चक्कर में सब पहुँच गये।

लॉन में बड़े करीने से जलपान की व्यवस्था की गयी थी। जब सब लोग बैठ गये, नाश्ता लग गया तो नेताजी ने अज्ञेय से अनुरोध किया कि, 'वात्स्यायन जी, शुरू करें।'
अज्ञेय बहुत गंभीर थे। न उन्होंने नेता जी की ओर देखा, न नाश्ता शुरू किया।
अनुरोध बार-बार दुहराया गया। अज्ञेय चुप तो चुप।
अचानक वे खड़े हो गये और धीरे से कहा, 'चलिये, बाहर चलें।'
सब उठ खड़े हुए। बिना एक कण छुए। नेता जी स्तब्ध। हम सब स्तब्ध।
बाहर आकर उन्होंने कहा, 'चलिए, किसी दुकान में जलपान किया जाय।'
मेरे मित्र, कवि-कथाकार और उस समय वहाँ के एस.डी.एम. राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय साथ में ही थे

उन्होंने अनुरोध किया मेरा आवास बगल में है, वहीं जलपान हो। हम सब अज्ञेय की मौन सहमति पाकर उनके आवास में चले गये। राजेन्द्र का परिवार उस समय नहीं था। अज्ञेय के प्रस्ताव पर सबने मिल कर नाश्ता बनाया। इलाजी, ओमवती जी रसोई में गयीं; अज्ञेय के नेतृत्व में लोगों ने आलू काटा, मटर के दाने निकाले, धनिया की पत्ती तैयार की और सामूह-भोज का आनन्द लिया।

००

दूसरे दिन अज्ञेय ने मुझे बुलाया और कहा, 'मेरे नाम पर बनने वाले संस्थान के लिए उस नेता के द्वारा दी जाने वाली जिस सहयोग-राशि की आप चर्चा कर रहे थे, वह आप नहीं लेंगे। इसकी सूचना आप उन्हें दे दें।'

'आप नहीं चाहते हैं तो वह सहयोग-राशि हम नहीं लेंगे। लेकिन कल आप जलपान की टेबिल से उठ क्यों गये? बहुत बुरा माना होगा उन्होंने।'

'मानने दें। जो आदमी अपने घर आये बुजुर्ग का सम्मान नहीं कर सकता, उसके यहाँ जलपान कैसे किया जा सकता है?' इतना कह कर वे मौन हो गये।

मैं भवानी भाई के पास गया, यह पूछने कि जब पहली रवेप में वे अज्ञेय के साथ पहुँचे तो हुआ क्या था? क्या उनका या अज्ञेय जी का अपमान किसी ने कर दिया?'

'अरे नहीं भैय्या! वह हम लोग का अपमान क्या करेगा? तुमने जिस कार में हम लोगों को भेजा था, वहाँ उतरते ही वह आदमी वयोवृद्ध मजीठिया साहब से कहा-सुनी करता रहा। उसने यह भी कह दिया कि आप अज्ञेय जी के बहाने हमारे परिसर में कैसे आ गये? मजीठिया साहब तो सज्जन आदमी हैं, सुन कर मुस्कराते रहे लेकिन भाई गंभीर हो गये। तभी मुझे लग गया कि कुछ न कुछ होकर रहेगा। वही हुआ भी।'

अज्ञेय की शालीन सामाजिकता और गहरी संवेदना ने नेताजी के अशालीन व्यवहार को अपने मौन से जो उत्तर दिया उससे हम अवाक् थे। अपने प्रति व्यक्त किये जा रहे सम्मान का उनके लिए
4 कोई अर्थ नहीं था। उनकी भाव-भूमि कठोर यथार्थ और उतने ही कठोर आदर्श के बीच झूलाझूलने वाली भावभूमि थी।

००

सन् १९६८ के जाड़ों में अज्ञेय फिर कुशीनगर आये। इस बार अकेले। उस क्षेत्र के एक प्रसिद्ध उद्योगपति ने मुम्बई वि० वि० से अज्ञेय के उपन्यासों पर शोध किया था। वे मिलने आये और दूसरे दिन दोपहर के भोजन के लिए उन्हें अपने आवास पर आमंत्रित किया।

अज्ञेय जी ने उत्तर दिया, 'अरुणेश जी से पूछिये।' फिर एक लंबी चुप्पी के बाद, 'जैसा वे चाहें।'
दूसरे दिन उनके घर जाते हुए कार में मैंने पूछा, 'वात्स्यायन जी, आपत्काल में हम इतने कायर क्यों हो गये थे? खासकर लेखक और पत्रकार? आप भी देश छोड़कर जर्मनी चले गये। लौटे तो इमर्जेंसी उठ जाने के बाद।'

'चलिये, अच्छा ही हुआ। सबकी पोल खुल गयी।' अज्ञेय बोले।

'आप भी तो चुप रहे।'

'चुप की भी एक दहाड़ होती है और अधिनायक अगर उसे सुन सकता है तो उसी से उसकी नींद हराम हो जाती है।' उसी के अगले माह 'नया प्रतीक' का संपादकीय देख कर मैं चौंक गया। शीर्षक था, 'चुप की दहाड़।'

००

उद्योगपति के यहाँ शानदार भोजन की व्यवस्था थी। अज्ञेय के सम्मान में क्षेत्र के दस-पन्द्रह अति विशिष्ट जनों को भी आमंत्रित किया गया था। डाइनिंग टेबुल पर अज्ञेय के लिए चाँदी का डिनर-सेट रखा हुआ था और फूलों से कमरा महक रहा था।

जब भोजन के लिए आमंत्रित किया गया तो अज्ञेय उठे और कोने की टेबुल पर रखी स्टील की प्लेट ली,

उसने खाना रखा और एक कुर्सी का कुशन खींच कर ज़मीन पर बैठ कर खाने लगे। उपस्थित जनों ने भी उनका अनुसरण किया और सब ज़मीन पर बैठ गये। सारा आभिजात्य छिन्न-भिन्न हो गया। चाँदी का डिनर-सेट पड़ा रह गया।

यह अज्ञेय का अहं नहीं, वास्तव में उनका कवच था— उन मूल्यों को बचाने का साधन भी, जो नष्ट हो रहे हैं, जिन्हें जानबूझ कर आधुनिकता, प्रगति और युग-धर्म के नाम पर नष्ट किया जा रहा है।

००

अंतिम बार अज्ञेय कुशीनगर आये अपनी मृत्यु के दो माह पहले, भगवतीशरण सिंह, विद्यानिवास मिश्र और दुर्गावती सिंह के साथ। दुर्गावती सिंह द्वारा अज्ञेय पर बनाये जा रहे वृत्तचित्र की शूटिंग के सिलसिले में।

महापरिनिर्वाण मंदिर के सामने अज्ञेय खड़े हैं, मौन में कुछ बोलते हुए। सूर्य उगता है और उसकी पहली किरण मंदिर पर पड़ती है फिर उतर कर अज्ञेय को आलोकित कर देती है। दुर्गावती जी बोलती
५ हैं— 'कट'। रह जाते हैं हाथ हिलाते पत्ते, शर्मीली सुबह, सन्नाटा बुनती हवा और अकेलेपन का वैभव। आँखें बुद्ध की मूर्ति को निहार रही हैं जैसे वे विगतागत के, वर्तमान के परात्पर महाबुद्ध को जीवन का नैवेद्य समर्पित कर रहे हों। उन फूलों के द्वारा, जो अँजुरी में नहीं हैं, भिन्न-भिन्न वनों-उपवनों में अपनी डाल पर खिले हैं। जिस कली को जहाँ पर खिलना है वह वहीं खिली हुई है। हे महाबुद्ध! जो भी सुख जिस डाल पर पल्लवित और पुलकित हुआ है, मैं उसे वहीं पर अक्षत, अनाघ्रात (बिना सूँघे हुए) अछूते और निर्मल रूप से तुम्हें अर्पित करता हूँ।

देवरिया खास
देवरिया-274001-उ.प्र.
मो०- 09451460030.

प्रति,
श्री व्रजेन्द्र त्रिपाठी
फैक्स- 011-23382428